'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १७ | वाराणसी, शनिवार, ७ फरवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

भीलोड़ा (साबरकांठा) ११-१-'५९

मन पर विजय पाने से ही दुनिया टिकेगी

आज सभा में बहुत से आदिवासी भाई आये हुए हैं। यह बहुत ही अच्छी बात है। आदिवासियों के साथ मेरा परिचय अब काफी पुराना और गहरा हो गया है। मैं आदिवासी क्षेत्र का अर्थ 'ग्रामदानी क्षेत्र' ही मानता हूँ।

कौन कहाँसे आया, यह विचार ही व्यर्थ

ये आदिवासी इस देश में प्राचीन काल से रह रहे हैं। इनके बाद यहाँ आर्य आये। फिर मुसलमान, यहूदी, पारसी आदि आये। पहले से यहाँ रहने के कारण ये लोग आदिवासी कहलाये। आदिवासी याने जिनका पहले जन्म हुआ। पीछेवाले याने जिनका बाद में जन्म हुआ। पहले या पीछे जन्म हुआ, इस बात को लेकर घर में कभी भेद नहीं किया जाता। यह पहले पैदा हुआ है, इसलिए घर का है और यह बाद में पैदा हुआ है, इसलिए घर का नहीं है, ऐसी बातें कहीं होती हैं? जो प्रेम से इस देश में आये, वे सभी इस देशवाले हैं। कौन कब आया, इसकी जाँच-पड़ताल करने की हमें जरूरत ही क्या है? इतिहासकार कल्पना कर कुछ लिख डालते हैं, लेकिन वास्तव में कौन कब आया, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

लोकमान्य तिलक ने काफी चर्चा कर निर्णय किया है कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव से आये हैं। लेकिन उत्तरी ध्रुव कहाँ और हिन्दुस्तान कहाँ? कौन कहाँसे आया, यह भगवान ही जाने, हमें इस चर्चा की जरूरत नहीं है। जो इस देश में आये, यहाँ रहे, भारत की सेवा करें या सेवा करना चाहें, वे सभी भारतीय हैं। आदिवासी, अनादिवासी, हरिजन, परिजन, हिन्दु, मुसलमान, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, ऐसे भेद हम कभी न करें। सभी परमेश्वर की संतान हैं। सभीको एक-दूसरे को सहयोग और मदद देनी चाहिए। स्नेह और सहजीवन के आधार पर समाज को खड़ा करना चाहिए।

आज हमारे देश में तरह-तरह के भेद हैं। लेकिन भगवान की सृष्टि में कहीं भेद नहीं है। सभीको भूख लगती है तो अन्न की जरूरत है, प्यास लगती है तो पानी की जरूरत है, सर्दी में शीत लगती है तो बचाव की जरूरत है, बीमारी होती है तो दवा की जरूरत है। जन्म-मरण, भूख-प्यास, सुख-दुःख, सभीमें समान है। भगवान ने हम सबके शरीर एक ही मिट्टी से बनाये हैं। एक ही मिट्टी में मिलेंगे भी। ब्राह्मण हो या शूद्र, गरीब हो या अमीर, सभीको मरना है। फिर परस्पर भेद करने का कारण क्या है?

मनुआ ऊधम मचानेवाला

सबका शरीर पंचभूतों से बना है। हर शरीर में एक-एक आत्मा है। आत्मा में कोई भेद नहीं है। अभेद के बीच में एक मनुआ ही धूम मचानेवाला है। मैं ऊँचा, तू नीचा, मैं गोरा, तू काला, मैं ऐसा, तू वैसा, यह सारे झगड़े मन के हैं। यह मन खाली समय में भेद खड़े करने का काम करता है। यदि हम इस खाली मन को हटा सकें तो बहुत काम बन सकता है।

हमारा सबसे बड़ा दुश्मन कोई है तो यह मन है और यदि सर्वश्रेष्ठ मित्र भी है तो यह मन है। इस मन को सुधारने से यह सर्वश्रेष्ठ मित्र सिद्ध होता है। निरंकुश रखने से सबसे भयंकर शत्रु भी सिद्ध होता है। इसलिए दुनिया में यदि कुछ कर्तव्य है तो वह सिर्फ मन को सुधारना है। भूदान, ग्रामदान, सर्वोदय-पात्र, नयी तालीम आदि समस्त प्रवृत्तियाँ मन को दुरुस्त करने का माध्यम हैं। मन को दुरुस्त करने के बाद ही आप मुक्त हो सकते हैं।

यदि आज मानव का मन दुरुस्त न होगा तो मानव-जीवन में भारी गतिरोध खड़ा हो जायगा। मनुष्य के हाथ में जब लकड़ी थी तो वह लकड़ी से मारपीट करता था। फिर तीर, कमान और तलवार आयी तो वह उसीका उपयोग करने लगा। आज भयानक से भयानक औजार आ गया है। इस समय मन को निरंकुश रखने से उन भयानक शस्त्रों को मौका मिल जायगा। फलतः जिस तरह भस्मासुर अपने सिर पर हाथ रखकर आप ही भस्म हुआ, उसी तरह अपने ही बनाये शस्त्रों से मानव-समाज भी समाप्त हो जायगा।

दुनिया की यह दौड़ और हमारी यह संकुचित वृत्ति

रूस नयी बस्तियाँ बनाने का प्रयत्न कर रहा है। जैसे अंग्रेज, फ्रेंच, डच, जर्मन आदि राष्ट्रों ने उपनिवेश बनाये, एवं पुर्तगाल ने गोआ को अपनी बस्ती बनाया, जिसे वह आज भी छोड़ने को तैयार नहीं है, वैसा ही रूस का प्रयत्न रहेगा। रूस चाहता है कि ये नये उपनिवेश शुक्र, मंगल और चन्द्रलोक में हों। इसलिए उसने सुनियोजित अभियान आरंभ कर दिया है।

अभी राकेट में बिठाकर एक आदमी को वहाँ उड़ाया गया। उड़नेवालों को ऊपर का वातावरण सहन करने की शिक्षा दी जाती है और ऐसी गोलियाँ भी दी जाती हैं, जिन्हें खाने से भूख-प्यास मिट जाय। इस सम्बन्ध में पूरा विवरण पत्रों में प्रकाशित हुआ है। प्रकाशित समाचार में रूसवालों ने कहा है कि 'हम लोग शुक्र, मंगल एवं चन्द्र पर पहुँचें या न पहुँचें, पर पृथ्वी पर तो हमारी सत्ता चलेगी ही।' पहले समुद्र पर जिनकी सत्ता होती थी, वे ही पृथ्वी पर सत्ता चलाते थे। अब समुद्र का मूल्य कम हो गया है। आज आसमान पर सत्ता चलानेवाले ही पृथ्वी पर सत्ता चलायेंगे। आसमान पर सत्ता चलाने के प्रयत्न बच्चों का खेल नहीं है। करोड़ों का खर्च और गम्भीर से गम्भीर खतरा उठाने की तैयारी करनी पड़ रही है। ऐसी स्थिति में हम एकभाषी या द्विभाषी राज्यों के प्रश्न खड़े करते रहेंगे तो क्या कहा जायगा? यह गाँव इस प्रान्त में जाय या उस प्रान्त में, ऐसी बातों को लेकर आप झगड़ते ही रहेंगे तो आपपर दूसरों का ही शासन चलेगा! वैज्ञानिक युग की इस तेज रफ्तार में आप संकुचित दिलों से क्या कर सकेंगे? सभी भेद-भाव भुलाकर साथ रहते हुए उदारता बरतने में ही हमारा कल्याण है।

मुझे बताया गया है कि यह क्षेत्र आदिवासियों का है। आदिवासी हो या अनादिवासी, ऊपर से गिरनेवाले ये भयानक बम तो भेदभाव रखे बिना ही सभी किसीको साफ करेंगे। इसलिए आप अब भेद-भाव मिटाकर रहने से ही टिक सकेंगे। छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त होने से मार खायेंगे, हार खायेंगे। इसे आप डायरी में नोट कर लें।

आदिवासी, ब्राह्मण, हरिजन आदि एक साथ रहें। सभीका खाना, पीना एक साथ हो। एक साथ खाने का अर्थ यह नहीं है कि शराब, मांस आदि जो आज नीचे वर्गों में चलते हैं, उन्हें हम अपना लें। ऐसा करने से अस्पृश्यता-निवारण का कोई लाभ ही नहीं रह जायगा। हम जहाँ हैं, उससे ऊपर उठें, यही अभिप्रेत है। सभी साफ-सुथरे रहें, बुरी आदतें छोड़ें और एक-दूसरे के अच्छे संस्कार ग्रहण करें। अगली पीढ़ी को यह कहने का अवसर नहीं रहना चाहिए कि अमुक आदिवासी है, हरिजन है या ब्राह्मण है।

गाँव एक सम्पूर्ण इकाई हो

यहाँ सभी बहनें गहना पहनकर बैठी हैं। इनके पूरे हाथ गहनों से भरे हैं। स्नान करने में भी कठिनाई होती होगी। ऐसी ही स्त्रियों को लोग दिल्ली ले जाते हैं और सबके सामने नचवाते हैं। विदेशी लोग जब वह देखते हैं तो कहते हैं कि हिन्दुस्तान में ऐसे जङ्गली लोग रहते हैं! इससे बड़ी बेइज्जती होती है। अतः सबका रहन-सहन भी एक ही ढंग का होना चाहिए। सबको समान नागरिकत्व मिलना चाहिए। इस जाति का यह रिवाज, उस जाति का वह रिवाज होने से भेद-भाव बढ़ता है। ग्रामवासी तथा नगरवासियों का व्यवहार भी समान होना चाहिए। सारा गाँव इकाई होनी चाहिए। इस जमाने में घर जैसी छोटी इकाई नहीं हो सकती। छोटी इकाइयाँ पुराने जमाने की प्रतीक हैं। नये युग में पूरे गाँव को ही इकाई माननी होगी। रसोई भले ही अलग-अलग पके, लेकिन गाँव का सामाजिक काम व्यवस्था और जीवन की दृष्टि से सम्पूर्ण इकाई मानकर ही करना चाहिए। इसीको मैं ग्रामदान कहता हूँ।

हम एक होकर आदिवासियों की सेवा करें

आदिवासी क्षेत्रों में ग्रामदान जल्दी होता है। आदिवासी जमीन का महत्त्व जानते हैं। सूर्य, चन्द्र तथा पवन आदि उनके देवता हैं। वे वैदिकों के वंशज हैं। वैदिक वृत्ति कायम रखकर ही वैदिक उपासना हो सकती, इसीलिए वे जमीन से चिपके हुए हैं। पीछे से आनेवाले लोगों ने इन्हें पहाड़ों में ढकेल दिया। अब लोग समझते हैं कि इन्हें पहाड़ों में रहना अच्छा लगता है। लेकिन वह अयथार्थ है। भला सुन्दर और समतल जमीन कौन नहीं पसंद करता? इन्हें पहाड़ों में खदेड़ा न गया होता तो ये समतल भूमि में ही रहते। अब हमें इन्हें जंगलों एवं पहाड़ों से वापस बुला लेना चाहिए।

संकटापन्न स्थिति में रहने के कारण ही आदिवासियों में सहजीवन की प्रथा प्रचलित हुई। ये सभी साथ गाते हैं, साथ नाचते हैं और एक-दूसरों की मदद करते हैं। इसीलिए ग्रामदान का विचार इनकी समझ में जल्दी आ जाता है।

पहले आदिवासियों के सारे क्षेत्र में ग्रामदान होने चाहिए। उसके बाद ग्राम-विकास का कार्य हो। आखिर इनका विकास कौन करेगा? चतुरंग सेना यह काम करेगी। जैसे सेना में हाथी, घोड़ा आदि चार अंग हुआ करते हैं, वैसे ही सरकारी अधिकारी, ग्रामपंचायत, सहकारी सेवक और सर्वोदय-(भूदान-ग्रामदान-कार्यकर्ता) सेवक हैं। ये मिलकर सेवाकार्य करें। पांडवों की भाँति पंचों को भी चाहिए कि गाँवों की समीचीन व्यवस्था करे। यदि ये गाँव अच्छे दीखने लगें तो दूसरे गाँववाले भी यह बात आसानी से समझ सकेंगे।

आदिवासियों में जितनी एकता है, उतनी एकता साधे बिना हम उनका नेतृत्व क्या करेंगे? हम एक होकर विकास-कार्य करेंगे, तभी काम होगा। आदिवासियों में सहज ही साम्ययोग की स्थापना हो सकती है। इसलिए मैं सिफारिश करता हूँ कि आप सब सेवक लोग आदिवासियों की सेवा के लिए निकल पड़ें, उनके साथ समरस हो जायँ और मिलकर देश की सेवा करें।

आदिवासियों का विश्वास अर्जित करें

सरकारी कर्मचारियों को आदिवासियों का विश्वास अर्जित करना होगा। यद्यपि उन्हें अधिक वेतन नहीं मिलता, फिर भी जो मिलता है, उसीमें से एक हिस्सा वे इनकी सेवा के लिए दें तो यह सध सकता है। मैंने यह बात सरकारी कर्मचारियों से कही है। वे इससे सहमत हो गये हैं। अब सेवकों का काम है कि उनके पास पहुँचकर संपत्तिदान प्राप्त करें। आज मैंने उन्हें शान्ति-सैनिक की उपाधि दे दी है। अब वे और हमारे सेवक एकरूप होकर सेवा करें।

साबरकाँठा और बनासकाँठा, ये दो ऐसे जिले हैं, जहाँके लोग सृष्टि की सेवा करके जी रहे हैं। देखिये, सामने ये पहाड़ हैं। अनासक्त और उदार पहाड़! जो पानी बरसता है, उसे वे दूसरों को दे देते हैं। अपने पास नहीं रखते। इतने उदार पहाड़ों के पास रहनेवाले कंजूस कैसे हो सकते हैं?

यह जिला पिछड़ा क्षेत्र माना जाता है। अब यह एकदम प्रगतिशील क्षेत्र बन सकता है। केवल मुँह फेरने की देर है! वर्तुल में एकदम मुँह फेर लेने पर आगे के लोग पीछे और पीछे के लोग आगे हो जाते हैं। इसके लिए हमारी चतुरंगी सेना के लोग प्रतिज्ञा लेकर इनकी सेवा करें, ऐसी मेरी प्रेमपूर्ण सूचना है।

प्रार्थना-प्रवचन

कसाणा (साबरकाँठा) १४-१-'५९

मैं हर तरह से सफल हूँ

आप लोग भूदान-यात्रा की सफलता के बारे में जानना चाहते हैं। सफलता या विफलता कैसे आँकी जाय, यह एक सवाल ही है। इसकी मीमांसा आज क्या करूँ? हाँ, सफलता और विफलता के प्रकारों की दृष्टि से कुछ विचार अवश्य किया जा सकता है। ये प्रकार तीन तरह के होते हैं: (१) तात्कालिक (२) चिरकालिक और (३) आन्तरिक।

तात्कालिक तो आप जानते ही हैं। कहाँ क्या हुआ, इसका हिसाब-किताब भी छिपा नहीं है। अमुक प्रदेश में भूदान, अमुक में ग्रामदान, अमुक में सम्मति-दान तो अमुक में शान्ति-सेना, इस तरह हर प्रदेश में नया-नया सूझ पड़ा। एक नहीं तो दूसरा, दूसरा नहीं तो तीसरा काम होता ही है। कहीं भी विफलता नहीं मिलती। वृक्ष को नवजीवन मिलता रहता है तो पत्तों के बाद फूल और फूल के बाद फल, इस तरह एक के बाद एक पैदा होता ही रहता है। हमें नयी-नयी और अलग-अलग बातें न सूझतीं तो विफल होने की सम्भावना भी रहती।

तात्कालिक परिणाम की दृष्टि से देखें तो किसी भी प्रदेश की यात्रा विफल नहीं कही जा सकती। इसे कार्य-कुशलता कहा जाय या सामाजिक प्रेरणा, यह मैं नहीं कह सकता। फिर भी तात्कालिक रूप में जहाँ जो कुछ सोचा गया, वह यथासंभव हुआ है।

आन्दोलन के विकास की कहानी

तेलंगाना में प्रवेश करते समय सोचा गया कि वहाँ का अशान्त वातावरण शान्त हो जाय और सर्वोदय की ओर कुछ रुचि पैदा हो। तदनुसार कुछ हुआ भी।

दिल्ली जाते समय सोचा कि जहाँ कम्युनिस्टों का प्रभाव न हो, उनके भय से लोग आतंकित न हुए हों, वहाँ कुछ काम हो तो लोगों में इसपर विश्वास पैदा होगा। वैसा भी हुआ। एक छोटा-सा संकल्प कर सभी लोग काम में जुट सकते हैं या नहीं, यह उत्तर प्रदेश में देखा गया। वहाँ लोग काम में लगे और यह परिणाम आया।

जमीन का सवाल हाथ में लिया जाय, इस दृष्टि से एक बड़ा आँकड़ा समाज के समक्ष रखा। वह भी लगभग २।३ तो पूरा हो ही गया। इससे जनता में काफी उत्साह पैदा हुआ। लोगों को हमारे काम के प्रति विश्वास भी हो गया। जमीन का मूल्य आधा गिर गया। उसे कुछ स्वाभाविक लोकजागृति कहा जा सकता है। बिहार में लगभग ऐसा ही दर्शन हुआ। इसलिए वहाँ तात्कालिक प्राप्ति तो हुई ही।

उड़ीसा में आन्दोलन ने एक नयी ही दिशा ली। वह थी ग्रामदान। वहाँ ग्रामदान बड़े पैमाने पर प्राप्त हुए।

आन्ध्र के बारे में विशेष नहीं कहा जा सकता। तात्कालिक प्राप्ति की दृष्टि से भी नहीं। फिलहाल मैं इसके कारणों की चर्चा में नहीं पड़ता। फिर भी आन्ध्र में समस्त कार्यकर्ता उत्साहित हुए। उन्होंने अपना काम चालू रखा। मेरी यात्रा के समय वे जो न कर पाये, उसे बाद में कर दिखाया। उन्होंने पहले जो संकल्प किया था, उसे मेरी यात्रा के समय पूरा किया। उनका नया संकल्प तो पूरा नहीं हुआ, पर पुराना पूरा हो गया। उनके इस समाधान से भी बहुत कुछ मिल गया।

तमिलनाड़ में पहले ही ग्रामदान से कुछ अगला कदम उठाने का तय कर लिया था। वह कल्पना मैंने तमिल-साहित्य के आधार पर तय की थी। उसे वहाँ रूप मिला। मदुरा के काम से सभी दलवालों को भी लगा कि 'यह कुछ ऐसा काम चल रहा है, जिसके आधार पर हम लोग आगे बढ़ सकते हैं।' क्योंकि वहाँके ग्रामदानों की बात सर्वांङ्गीण थी, एकांगी नहीं।

फिर केरल के बारे में यह कहा जा सकता है कि वहाँ शान्ति-सेना और सम्मतिदान की नयी प्रेरणा मिली। ग्रामदान आदि तो वहाँ बिलकुल नहीं मिल सकेंगे—यही सोचा गया था। लेकिन हो गया उससे विपरीत। वहाँ भी ग्रामदान मिले और काफी मिले। यद्यपि वहाँ बहुत छोटे-छोटे गाँव हुआ करते हैं, किसी गाँव में दस-बारह घरों से ज्यादा घर नहीं होते, वैसे गाँव ग्रामदान में मिले। कम्युनिस्टों को लगा कि इसमें से कुछ हासिल हुआ है, यह बहुत नहीं, फिर भी कुछ तात्कालिक परिणाम तो हुआ ही।

कर्नाटक में 'जय-जगत्' की घोषणा हुई। येलवाल-परिषद् हुई। जहाँ कार्यकर्ता लोग कभी भी इकट्ठा नहीं हुए थे, वहीं पहली बार इकट्ठे हुए और उन्हें अपनी शक्ति की अनुभूति हुई।

महाराष्ट्र में भूदान के काम को दृष्टि से देखें तो एक पूरा महाल ही दान में मिला। याने हमारे कार्यकर्ताओं को तो नवनिर्माण करने का एक केन्द्र ही मिल गया। इससे भी अधिक कुछ हो सकता था, ऐसा वहाँवालों को लगता है। लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता। महाराष्ट्र की स्थिति देखते हुए कहना पड़ता है कि बहुत ही अच्छा परिणाम निकला।

गुजरात में शान्ति-सेना का कुछ काम हुआ। याने तात्कालिक परिणाम कुछ-न-कुछ हुआ ही। कार्यकर्ताओं में उत्साह भी आया।

स्थाई परिवर्तन की ओर

चिरकालिक परिणाम की दृष्टि से विचार करें! मैं मानता हूँ कि पूरे आन्दोलन का चिरकालिक परिणाम बहुत ही गहरा होनेवाला है। इसका प्रभाव धर्म-कल्पना पर होगा। अब तक धर्म के विषय में जो कल्पना बनी हुई है, उसमें परिवर्तन होकर नये मूल्यों की स्थापना होगी। इस बारे में मैं निश्चिन्त हूँ।

आन्तरिक परिणामों की दृष्टि से हमें अभी मध्यम सफलता मिली है। कार्यकर्ताओं के बारे में मैंने जो आशा रखी थी, वह अभी तक सफल नहीं हो पायी है। फिर भी पहले से काफी अच्छी स्थिति है। कार्यकर्ता सर्वत्र परमेश्वर-दर्शन करनेवाले हों। वैष्णवों की जो अभिलाषा थी, वह मेरी भी थी। यद्यपि वह अभी पूरी नहीं हुई, फिर भी पूरी हो सकती है। कार्यकर्ता परस्पर अनुराग और परिपूर्ण विश्वास के साथ एकरस होंगे, ऐसी मैंने अपेक्षा रखी थी। अभी वहाँ तक कार्यकर्ता पहुँचे नहीं है। संभव है, वहाँ तक पहुँचने में कुछ देरी लगे! उसके लिए थोड़ी बहुत तपस्या करनी ही होगी।

अब सर्वोदय-पात्र का विचार मिल गया है। वही कार्यकर्ताओं से तपस्या करायेगा और उससे स्वाभाविक सुधार होगा। सर्वोदय-पात्र का विचार तब तक नहीं टिक सकता, जब तक कि जनता को निष्काम सेवा करनेवालों की मूर्तियाँ न दिखाई दें। यदि हम आरंभ में ही ऐसे कार्यकर्ताओं का दर्शन चाहें तो यह काम ही शुरू नहीं हो सकता। कार्यकर्ताओं का दर्शन तो आप-में से ही होगा, यह समझकर सर्वोदय-पात्र की स्थापना तो की जा सकती है। लेकिन यह भावना तभी टिक सकेगी, जब कि वे देखेंगे कि हरिजन याने हरिभक्त उनकी सेवा कर रहे हैं। इस तरह वे सर्वोदय-पात्र की कसौटी करेंगे।

मैंने सर्वोदय-पात्र को बुनियादी काम और अन्तःशुद्धि का साधन माना है। यही आन्दोलन का अधिष्ठान है। लोग निरन्तर भावना के साथ हमें खाने को देते रहें और हम अशुद्ध चित्तवाले बने रहें, यह हो ही नहीं सकता। भले ही आप अनाज का रूपान्तर पैसे में करें, लेकिन वह अनाज जनता का ही है। उससे हमारी शुद्धि होगी। 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' का अर्थ भी मैं यही करता हूँ। जनता द्वारा प्रेम से दिया हुआ अनाज खाने से अपना सात्त्विक जीवन बनता है, वह शुद्ध कहलाता है। इस दृष्टि से देखते हुए यह समझना चाहिए कि जो काम हम अन्य प्रदेशों में खड़ा नहीं कर सके, उसे यहाँ खड़ा करना है। यहाँ ११५ शान्ति-सैनिक हुए हैं, उन सबका एक परिवार बने और सभी हिल-मिलकर काम करें। अन्य प्रदेशों में यह नहीं हो पाया है, जिसे हमें यहाँ कर दिखाना है। पहले ज्ञानयोग चलता रहा। अब कर्मयोग का आरंभ हुआ है। नींव तैयार हो गयी। अब इमारत खड़ी करनी है, जोड़ाई करनी है। इसलिए अन्य प्रदेशों के कामों से इस प्रान्त के काम की तुलना नहीं हो सकती। यहाँ जोड़ाई का, निर्माण का काम हो रहा है। इस दृष्टि से देखें तो गुजरात का काम मुझे अत्यन्त उत्साहवर्धक मालूम पड़ा। मैं यहाँसे शक्ति लेकर आगे जा रहा हूँ।

शक्ति समन्वित होकर बढ़ने की शक्ति प्रतीत नहीं होती तो मुझे यह आन्दोलन निष्फल मालूम पड़ता। गुजरात, महाराष्ट्र के बारे में भी ऐसा ही अनुभव हुआ। हर प्रदेश छोड़ते समय मुझे लगता है कि मेरी शक्ति बढ़ी है। यदि इसी तरह सभीकी शक्ति बढ़े तो मैं मानता हूँ कि हमें बहुत-से कार्यकर्ता मिलेंगे।

परिवार-भावना के विस्तार से ही धर्म की स्थापना

प्रश्न : धर्म-स्थापना के विषय में आपने जो कुछ कहा, उसे और स्पष्ट कर समझायें।

उत्तर : अभी तक धर्म के विषय में यह धारणा थी कि थोड़ा-बहुत दे-देने से ही धर्म हो जाता है। लेकिन वास्तव में धर्म ऐसा नहीं है। समाज के प्रचलित मूल्यों को बदलकर, नयी सृष्टि करना ही धर्म-परिवर्तन कहा जायगा। अब तक बन्धुत्व-भाव एक परिवार तक सीमित था। उसे अब गाँव तक विस्तृत करना है। सारे गाँव को ही परिवार का रूप देना है।

क्या आज हम अपने घर का हिसाब-किताब किसी दूसरे को बताते हैं? ग्रामदानी गाँव में अपना घरेलू हिसाब-किताब दुनिया के सामने रखना धर्म माना जायगा। गाँवों में जातिभेद का निरसन होगा। धर्म का आचरण किया जायगा। पुरानी जाति-व्यवस्था मिट जायगी, तभी ग्रामदान सरलता से चल सकेगा। ग्रामदानी गाँव में व्यक्तिगत धर्म-विचार नहीं किया जायगा। समूह किस तरह आगे बढ़े, यही सोचा जायगा। इसी तरह जब कुटुम्ब का विस्तार गाँव में होगा, तभी धर्म-परिवर्तन हो सकेगा।

पहले परिवार-व्यवस्था कहाँ थी? केवल व्यक्ति था। धर्म का स्वरूप भी अलग था। सृष्टि की सेवा की जाय और जो प्राप्त हो, उसे लिया जाय, यह व्यक्ति की आकांक्षा थी। उस समय व्यक्ति और सृष्टि दो थे। यज्ञ धर्म था। सृष्टि-सेवा ही यज्ञ था। फिर परिवार-व्यवस्था बनी। समाज-धर्म की स्थापना हुई और यज्ञ के साथ दान भी आ मिला।

अब परिवार के बदले गाँव ही एक परिवार होगा। इसमें हम परिवार को मिटा नहीं देते। जिस तरह परिवार-व्यवस्था होने पर व्यक्ति मिट नहीं गया, बल्कि वह परिवार में लीन हो गया, उसी तरह अब पूरे गाँव में परिवार को लीन करने से परिवार नष्ट नहीं होता। नये मूल्यों की स्थापना होती है। पुराने मूल्य मिटते हैं। अब यह भावना नहीं होनी चाहिए कि मुझे व्यक्तिगत रूप में कुछ मिले, मेरे बच्चे को व्यक्तिगत रूप में कुछ मिले। सारा चिन्तन सामूहिक रूप में ही करना होगा। सहचिन्तन तथा सहजीवन से धर्म के मूल्य बदलेंगे।

कई गाँवों में बहुत-सी जातियों के लोग रहते हैं। वे सभी एकरूप होकर रहें। इसके लिए आज तक बहुत कुछ कल्पनाएँ की गयी हैं, उन सबको मिटा देना होगा। ऐसा करने में अनेकों वर्ष लगेंगे, जैसे कि व्यक्तिगत धर्म से कुटुम्ब धर्म में आने में समय लगा। पहले विवाह आठ प्रकार के थे। गान्धर्व विवाह की प्रथा से हटकर धीरे-धीरे लोग आज की विवाह-पद्धति पर आये हैं। इसी तरह समाज-परिवार बनने में समय तो लगेगा ही। कदाचित् हजार वर्ष भी लग जायँ। लेकिन विज्ञानयुग में संभव है, इतना समय न लगे।

पुरानी परम्परा में पुण्य, पाप का फल स्वयं कर्ता को ही दिया गया है। यह भी गलत है। मेहनत कोई करता है और लाभ कोई उठाता है! बीड़ी कोई पीता है और जलता हुआ टुकड़ा फेंक देने से घर किसीके जलते हैं! इसमें क्या तथ्य है? पूर्वजन्म के कर्मों का फल कहना पर्याप्त नहीं है। कुछ कर्म वैयक्तिक हो सकते हैं, पर सारा जीवन सामुदायिक कर्मों पर टिका है। सहजीवन में हम सारे समाज को परिवार में सम्मिलित करेंगे, तभी यह कर्म-मीमांसा बदलेगी। कर्म एवं उसके फलों की मीमांसा के परिवर्तनोपरांत ही धर्म-संशोधन का काम प्रारंभ होगा।

विज्ञान का वास्तविक परिणाम

प्रश्न : आप बार-बार विज्ञान-युग का उल्लेख करते और कहते हैं कि 'विज्ञान-युग में मानसिक क्षोभ मिटानेवाले निश्चय किये जायँगे, भोग के साधन बढ़ेंगे, पर भोग-वासना घट जायगी, स्पर्श से जो आनन्द होता है, वह दर्शन से ही हो जायगा। आखिर यह विज्ञान-युग क्या है?'

उत्तर : सृष्टि और शरीर के साथ जो सम्बन्ध है, उसे विज्ञान कहते हैं। विज्ञान मानव को अधिक-से-अधिक मान्य होता है। आज मानव को शरीर का पूरा ज्ञान नहीं है। जब उसे शरीर का अन्तर्बाह्य ज्ञान हो जायगा, तब वह तुरन्त समझ जायगा कि किसीके गाल पर तमाचा जड़ देने में जितनी हानि है, उससे अधिक हानि उसे अत्यन्त आग्रह कर लड्डू खिलाने में है। फिर कभी वह मानव को लड्डू की मार से न मारेगा। सृष्टि और शरीर के सम्बन्ध का ज्ञान होने पर वह इतने कपड़ों से अपने को ढँककर न रखेगा। तब उसे ध्यान में आयेगा कि शरीर को सूर्य किरणों की कितनी आवश्यकता है! फिर वह खुले खेतों में काम करने जायगा।

आज ज्ञान कम है, इसीलिए लालसा अधिक है। यदि सूक्ष्म ज्ञान हो जाय तो फिर नींद खराब कर सिनेमा देखने कौन जायगा? ट्रेनें भी रात को बंद रहेंगी। सुबह ५ बजे चालू होंगी और शाम को ७ बजे बन्द! आज तो रातभर ट्रेनों की धाँधली चलती रहती है, जिससे स्टेशन मास्टर आदि पर अमानुषिक अत्याचार होता है। फिर खानों में ८-८ घंटे कौन काम करेगा? मानव का स्वास्थ्य सबसे बड़ा सौभाग्य है। यह गंभीर विचार लोगों के ध्यान में आते ही स्वास्थ्यनाशक प्रवृत्तियों पर प्रतिबंध लग जायगा। आज शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है, इसका किसीको पता नहीं है। कल जब किसीको यह पता चल जायगा तो वह क्रोध, द्वेष

आदि छोड़कर निर्विकार रहने का प्रयत्न करेगा। विज्ञान इस दिशा में उसकी मदद करेगा।

विज्ञान के कारण सामाजिक जीवन सर्वथा सुव्यवस्थित हो जायगा। वैज्ञानिक वस्तुओं का उपयोग करते समय इन्सान बहुत सतर्कता बरतेगा। आज बहुत-से रोगों की औषधियाँ उपलब्ध नहीं हैं। विज्ञान-युग में वे सभी सुलभ होंगी। किन्तु मानव को उनकी जरूरत ही न पड़ेगी, क्योंकि लोग स्वास्थ्य विज्ञान के अनुरूप आचरण करेंगे। जनसंख्या बढ़ती है। सभी जल्दी-जल्दी मर रहे हैं। इसके बदले विज्ञान-युग में लोग संयम-पूर्वक जीवन बितायेंगे। दीर्घायु होंगे। फिर प्रसन्न चेहरा देखते ही आनन्द हो जायगा। विकसित मानसवालों को दर्शन से ही पर्याप्त आनंद मिल जाता है।

प्रार्थना-प्रवचन

सागवाड़ा (राज०) २१-१-'५९

बहनें शान्ति की प्रतिमूर्ति बनकर मेरा आन्दोलन सफल करें

आज यहाँ इतनी बहनों और बच्चों को देखकर बहुत आनन्द हुआ है। कहा जाता है कि हिन्दुस्तान की बहनें पिछड़ी हुई हैं। बच्चे तो पिछड़े हुए हैं ही। परन्तु अनुभव यह है कि सर्वोदय का विचार समझने में बहनें आगे रहती हैं और भाई पीछे रहते हैं।

देने की बात आती है तो उदार बनना चाहिए, बहनें यह जानती हैं। भूमिहीनों के घर में भी बच्चे होते हैं, उनके पास जमीन न रहने से बच्चों की हिफाजत कैसे होगी? इसलिए उनको जमीन जरूर देनी चाहिए। ये बच्चे भी कह रहे हैं कि जमीन देनी चाहिए। लेकिन जमीन पुरुषों के नाम पर होती है। वे अपने घर के मालिक, खेती के मालिक, धंधे के मालिक, खानदान के भी मालिक होते हैं। अपनी पत्नी के भी स्वामी होते हैं। भले ही एक दिन सब कुछ छोड़कर चल देना पड़े, लेकिन अभी तो इन्हें मालिक होने का गरूर है। ये मालिक ही कंजूस बनेंगे तो कैसे चलेगा? इन मालिकों के दिल पिघलाने के लिए बहनों को "सत्याग्रह" करना चाहिए।

बहनें हवा-पानी के मंत्र के लिए सत्याग्रह करें

लोग कहते हैं आन्दोलन में "सत्याग्रह" होगा, तभी ये मालिक पिघलेंगे। हमने कहा, भाई जरा सब्र रखो। कुरान में एक सुन्दर वाक्य है "जो सब्र करनेवाले हैं, उनको खुशखबरी सुनायें।" हमने आठ साल सब्र किया। अब ये बहनें सत्याग्रह करेंगी। ये अपने घरवालों से कहेंगी कि तुम बाबा को जमीन नहीं दोगे तो हम शाम का खाना छोड़ देंगी। दोपहर का खाना तो हम खा लेंगी। क्योंकि हमें घर का काम करना है। बच्चों को भी सम्हालना है, हर घर में बच्चे हैं, इसलिए हमें उनकी देख-रेख और सुख-सुविधाओं के लिए जमीन देनी है। बच्चों के प्रेम के लिए बाबा घूम रहा है। परन्तु आप नहीं समझते हो तो हम उपवास करेंगी। ऐसा करेंगी तो भूदान-यज्ञ कुछ ही सप्ताह में सफल हो जायगा।

मैं सोचता हूँ कि पुरुषों के दिल पत्थर के बने हैं और माता के दिल मक्खन के बने हैं? क्या बच्चे सिर्फ माता के हैं और पिता के नहीं हैं? वे जिम्मेवारी से परे हैं क्या? एक बाजू माता तथा बच्चे और दूसरी बाजू पिता हो, ऐसा नहीं हो सकता है। जिस बाजू माता और बच्चे होंगे, उसी बाजू पिता को रहना होगा।

ग्रामदान में जमीन छोड़कर भाग जाने की बात नहीं है। जैसे हवा, पानी सबके लिए है, वैसे जमीन भी सबके लिए है। सभी हिल-मिलकर जोतें-बोयें और पैदा करें। प्रेम से रहें, इसीका नाम ग्रामदान है। मैं यह बात हमेशा कहता हूँ कि जमीन का मालिक ईश्वर है। यही मेरा मन्त्र है। मन्त्रों से ही सारे काम होते हैं।

पहले मोक्ष पाने के लिए बड़ा लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम था। वेद पढ़ो। उपनिषद् पढ़ो। तप करो। जंगल में जाओ। तब कहीं मोक्ष मिलेगा। फिर आये सन्त! उन्होंने कहा, मोक्ष पाने के लिए 'राम-नाम' बस है। इस नाम से हजारों लोग मुक्त हो गये। जब तक राम-नाम तक साधारण जन की पहुँच नहीं थी, तब तक समाधान नहीं था। सन्तों ने 'राम-नाम' का मन्त्र देकर आत्म-समाधान करा दिया। तबसे अब तक राम-नाम के आधार पर सारा भक्ति-मार्ग खड़ा है। उसी प्रकार हवा-पानी के इस मन्त्र पर हमारा सारा काम खड़ा है।

दिल्ली के बीहड़ जंगल में खोया भूमि का प्रश्न!

दिल्ली के रास्ते बड़े लम्बे-चौड़े हैं। स्वराज्य के बाद हिन्दुस्तान में कितनी मोटरें आयीं? स्वराज्य के पहले कितनी मोटरें थीं? पहले की अपेक्षा अभी मोटरें ज्यादा हैं। वे दिल्ली की सड़कों पर खूब दौड़ती हैं।

दिल्ली में बड़े-बड़े मकान हैं। वे इस तरह से बनाये गये हैं कि उनमें रहनेवालों पर बाहर की हवा का असर नहीं होता। बाहर मई महीने की गरमी हो तो उन मकानों में दिसम्बर की सी ठंड रहती है। बाहर कड़कड़ाती सर्दी हो तो अन्दर पर्याप्त गरमी रहती है।

दिल्ली के इस बाहरी ठाठ-बाट को देखकर विदेशी लोग हिन्दुस्तान की प्रगति समझ लेते हैं। लंदन, पेरिस, बर्लिन से आये हुए लोग दो-तीन दिन रहते हैं और कहते हैं कि हिन्दुस्तान की शक्ल ही बदल गयी है।

दिल्ली की दूकानें भी बहुत शानदार हैं। पेरिस की दूकानों में फ्रान्स का माल मिलता है, लंदन की दूकानों में इंग्लैंड का माल मिलता है, बर्लिन की दूकानों में जर्मनी का माल मिलता है और दिल्ली की दूकानों में दुनिया भर का माल मिलता है। इससे विदेशी लोगों को हिन्दुस्तान की तरक्की के साथ ही यह भी लगता होगा कि हम हवाई जहाज में बैठकर दिल्ली के लिए निकले थे, किन्तु कहीं गफलत में हमारा हवाई जहाज वापस पेरिस तो नहीं आ गया है?

दो-तीन दिनों के प्रवास में हिन्दुस्तान का सही अध्ययन नहीं किया जा सकता। इस देश की सम्पूर्ण जानकारी के लिए पूरा समय अपेक्षित है। अमेरिका के एक सज्जन हैं। अपने इस देश में वकालत का काम कर चुके हैं। उन्होंने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि "हिन्दुस्तान को सर्वतोमुखी प्रगति हो रही है, लेकिन भूमिहीनों को भूमि नहीं मिल रही है। यही हिन्दुस्तान के राज्य-कारोबार का सबसे बड़ा कलंक है।" हमारे यहाँ जमीन का मसला हल न होने के कारण अन्य लोग भी इसी तरह कहते हैं।

अब कुछ सीलिंग करने का प्रस्ताव नागपुर (कांग्रेस) में हुआ है। उस प्रस्ताव में पहले ऐसा था कि भूमिहीनों तथा कम

जमीनवालों को सरकारी जमीन दी जायगी। यानी सारा गोलमाल रखा गया था। किन्तु बाद में उसमें सुधार कर लिया गया कि सिर्फ भूमिहीनों को ही जमीन दी जायगी।

जमीनवाले भी अक्लवाले हैं। उन्होंने पहले ही जमीन का बँटवारा कर लिया है। मेरे पाँच भाई हों और मैं छठा हूँ तो हरएक के नाम पर बीस-बीस एकड़ जमीन कर दी। याने १२० एकड़ जमीन मेरे घर में रहेगी। कुछ जमीन लड़कों के नाम पर भी रहेगी। अब तो स्त्रियों को भी कानून से हक मिला है। उनके नाम पर मैं जमीन रख सकता हूँ। पीछे थोड़ी-सी जमीन बच जाती है। सीलिंग होने से भूमिहीनों को वही थोड़ी मिलेगी।

अब कहते हैं कि भूमिहीनों की 'को-ऑपरेटिव' करो। १०० एकड़ की सहकारी संस्था बनाओ। जमीन कहाँसे आयेगी? मालिक के पास ४० एकड़ जमीन है। पाँच लड़के हैं। हरएक के नाम पर पाँच-पाँच एकड़ जमीन होगी। उनके भी लड़के होंगे, तो प्रति व्यक्ति एक-एक एकड़ जमीन आयेगी। क्या वहाँ इनका को-ऑपरेटिव नहीं चलेगा? इन सहकारी संस्थाओं से क्या होगा? इसीलिए मैं कहता हूँ कि जमीन का सारे गाँव को मालिक बनाओ। सारे गाँव का एक सहयोगी संघ बनाओ। अगर प्रेम से ऐसा करोगे तो सारे गाँव का भला होगा और सरकार का भी भला होगा। अन्यथा अब सीलिंग का प्रस्ताव पास हो गया है। अब हर प्रदेश की सरकारें इसपर अमल करनेवाली हैं। कोई कछुए की चाल से अमल करेंगी तो कोई खरगोश की चाल से। किसी भी चाल से हो, अमल हुए बिना नहीं रहेगा।

प्रस्ताव के मुताबिक होगा तो कोर्ट में मुकदमे चलेंगे। मुआवजा देने के लिए सरकार रुपये कहाँसे लायेगी? सरकार के कानून से कुछ काम बनेगा और कुछ काम बिगड़ेगा। हम चाहते हैं कि काम बने तो सही, पर बिगड़े नहीं। उसीका उपाय है प्रेम और दान! 'कलौ दानं च नाम च' कलियुग में दो चीजें हैं, भगवान का नाम लेना और दूसरों के लिए दिल खोलकर दान देना। मुट्ठी खोलकर दान दो। ऐसा ही वाक्य इस्लाम में है। ईसाई धर्म में भी "प्रभु का नाम लो और भाइयों की मदद करो।"

शांति-सेना और नारी-जगत

आज यहाँ साधन-दान में दो बैल मिले हैं। ये ऐसे बैल हैं, जिन्हें दान का आनन्द मालूम नहीं है। मालिकों द्वारा ये दिये गये हैं। पराधीन हैं ये। हमें राजस्थान से स्वाधीन बैल चाहिए। बिना पूँछ और बिना सींगवाले बैल! जो स्वयं मालिक हों, अपने को अर्पित करनेवाले हों और अर्पित कर आनन्द अनुभव करनेवाले हों। आप कहेंगे कि यह कैसा आदमी है, जो इन्सानों को बैलों की उपमा दे रहा है। किन्तु यह उपमा मेरी नहीं है। भगवान कृष्ण की उपमा है। उन्होंने गीता में अर्जुन को भारतीयों में 'भारत-ऋषभः' कहा है। हमें हर गाँव में ऐसे मजबूत मनुष्य, शान्ति-सैनिक मिलने चाहिए। उनके लिए हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय।

इस प्रकार शांति-सैनिक और सर्वोदय-पात्र की कड़ी आंदोलन के साथ जुड़ जाने से यह सर्वोदय का विचार परिपूर्ण बन गया है। जबसे मैंने शान्ति-सेना की बात कही है, तबसे नारी-जगत की ओर मेरा सबसे अधिक ध्यान गया हुआ है। अगर महिलाओं ने शान्ति के कार्यक्रम को माध्यम बनाकर इस आन्दोलन को उठा लिया तो सफलता स्वयं हमारे पीछे दौड़ेगी। क्योंकि बहनें शान्ति की प्रतीक होती हैं। मैंने बहनों से बार-बार कहा है कि वे इधर-उधर की सुनी-सुनाई बातों को छोड़कर इस आंदोलन का प्रत्यक्ष दर्शन करें। कान से सुनने में वह रस नहीं है, जो प्रत्यक्ष दर्शन में है। पूछा गया कि सत्य और झूठ में कितना अन्तर है। उत्तर मिला कि जितना देखने और सुनने में है। इसलिए मैंने बहनों को यह आह्वान दिया है कि वे आन्दोलन में आयें, शान्ति-सैनिक बनें, सत्याग्रह करें और इस विचार का प्रत्यक्ष दर्शन करके अपने जीवन को कृतार्थ करें। ●●●

उदयपुर डिवीजन, हिन्दी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सामने

डूंगरपुर (राज०) २६-१-'५९

हिन्दी की सरलता ही उसकी सर्व-श्रेष्ठता है

हिन्दीवालों को मुख्य काम दक्षिण भारत में करना है। इन दिनों दक्षिण भारत में, खास कर तमिलनाड में हिन्दी के लिए कुछ अरुचि निर्माण हुई है। उसका कारण और कुछ नहीं है, सिवाय इसके कि उनको यह डर लगता है कि शायद हिन्दी हमपर लादी जायगी।

भाषा की दृष्टि से देखा जाय तो बंगाली और तमिल भाषा का साहित्य बहुत समृद्ध है। बंगाली में अर्वाचीन साहित्य अच्छा है। हिन्दी में भी उसका अनुवाद हुआ है। इन दिनों मेरा खयाल है कि बंगाली भाषा की जितनी प्रगति हुई, उतनी प्रगति अन्य किसी भाषा की नहीं हुई है। तमिल भाषा दो हजार साल पहले की है। तमिल व्याकरण भी दो हजार साल पहले का है। उस भाषा में प्राचीन साहित्य बहुत है। उसकी अपेक्षा हिन्दी में प्राचीन साहित्य की कमी है। वे दोनों अपनी-अपनी भाषा का अभिमान रखते हैं। हम लोगों को अभिमान नहीं है। हमारा ऐसा दावा भी नहीं है कि हिन्दी उनसे ज्यादा समृद्ध है। हमारा कहना सिर्फ इतना ही है कि हिन्दी सरल है। राष्ट्रभाषा के तौर पर हम इसे सीखें तो अखिल भारत की दृष्टि से अच्छा होगा।

दक्षिण और उत्तर में क्रिकेट

जब मैं तमिलनाड में घूम रहा था, तब मैंने वहाँ बहुत समझाया कि तमिल भाषा पर आक्रमण नहीं हो सकता है। मैं तमिल भाषा जानता हूँ। बहुत अच्छी तो नहीं जानता हूँ, पर काफी जानता हूँ। उसका साहित्य मैंने पढ़ा है। तमिल-भक्तों के भजन भी मैंने कंठस्थ किये हैं। तमिलनाड के लोग मुझे तमिल ही समझते हैं। मेरी बातें भी वे मानते हैं। वे देखते हैं कि यह उत्तर हिन्दुस्तान का मनुष्य है और हमारी भाषा प्रेम से सीखता है। उत्तर हिन्दुस्तान के लोग दक्षिण की भाषा नहीं सीखते हैं। कोई व्यापार के लिए सीखे तो अलग बात है, परन्तु प्रेम के लिए सीखना, यह विशेष बात है।

मैंने उन लोगों को समझाया कि प्राचीन काल से उत्तर भारत और दक्षिण भारत में क्रिकेट का खेल चला है। कभी इनका इनिंग्स चलता है, कभी उनका। कभी इनका जोर चलता है, कभी उनका। वैदिक ब्राह्मण, बौद्ध और जैन बहुत तादाद में उत्तर से दक्षिण में गये तो उनकी इनिंग्स चली। बाद में शंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, ये आचार्य दक्षिण भारत से उत्तर भारत में गये और उन्होंने खूब प्रचार किया। उत्तर भारत के बड़े-बड़े सन्त उनके शिष्य बनें। तुलसीदास, गुजरात के दयाराम, सूरदास ये वल्लभाचार्य के शिष्य बने। रामकृष्ण, विवेकानन्द, ज्ञानदेव, एकनाथ आदि शंकराचार्य के संप्रदाय के थे। गौरांग, चैतन्य महाप्रभु ये मध्वाचार्य के अनु-

यायी हुए। इस तरह गुजरात, महाराष्ट्र व बंगाल के बड़े-बड़े पुरुष उनके शिष्य बने। उस समय दक्षिण भारत की इनिंग्स चली। बाद में फिर उत्तर भारत की बारी आयी और रविन्द्रनाथ, अरविंद, गांधी इन महापुरुषों का असर दक्षिण भारत पर हुआ। अब उत्तर की इनिंग्स खत्म होने आयी है, अब फिर दक्षिण की बारी प्रारंभ होनी चाहिए।

लेकिन सोचना चाहिए कि इनिंग्स कैसे चले? शंकराचार्य, मध्व और वल्लभाचार्य की इनिंग्स कैसे चली? मध्वाचार्य ने संस्कृत में लिखा। वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, शंकराचार्य इन सबने संस्कृत में ही लिखा। संस्कृत उस समय की राष्ट्र-भाषा थी। वे अगर तमिल और मलयालम में लिखते तो जैसे कई महापुरुष हो गये, वैसे ये भी उस-उस प्रदेश के महापुरुष हो जाते। परन्तु समस्त राष्ट्र को ध्यान में रखकर उन्होंने संस्कृत सीखी। वे संस्कृत में प्रवीण बने। इसी तरह सारे राष्ट्र में हिन्दी चलती है तो आज आपको भी हिंदी में प्रवीण बनना चाहिए।

हिन्दी में कैसे प्रवीण हों, यह सवाल अगर आप पूछेंगे तो मैं आपसे कहूँगा कि संस्कृत भाषा तमिलनाड की भाषा नहीं थी, केरल की भाषा नहीं थी, वह तो काशी की भाषा थी। परन्तु काशी के विद्वानों ने जितनी उत्तम संस्कृत नहीं लिखी, उतनी उत्तम संस्कृत शंकर और रामानुजाचार्य ने लिखी है। इस तरह मैंने उन लोगों को समझाया और बताया कि संस्कृत से हिन्दी ज्यादा सरल है, इसलिए तुम हिन्दी खूब सीखो और ऐसी हिम्मत रखो कि अब आपकी इंनिग्स चलेगी। यह हिम्मत नहीं करोगे तो बहुत सुन्दर होने के बावजूद तमिल भाषा सीमित हो जायगी। अगर आप कहेंगे कि हम इंग्लिश में चलायेंगे तो इंग्लिश तो बहुत थोड़े लोग समझते हैं। आम जनता में इंग्लिश नहीं चलेगी। इसलिए आपका इंग्लिश भी सीमित लोगों के लिए होगा।

हिन्दीवाले दक्षिण की भाषा सीखें

सुनना बड़ा रुचिकर मालूम होता है। परन्तु भाषा अगर लादी जाय तो कैसे चलेगा? सरकार की ओर से वह लादी जायगी, ऐसा उन्हें लगता है। परन्तु हम हिन्दीवाले भी क्या करते हैं? दक्षिण की भाषा नहीं सीखते हैं। इसलिए मेरा ऐसा मानना है कि उत्तर हिन्दुस्तान के लोगों को दक्षिण की चारों भाषा में से कम-से-कम एक भाषा अवश्य ही सीखनी चाहिए। आप लोग यह निश्चय कर लीजिये कि हम दक्षिण की एक भाषा जरूर सीखेंगे। राजस्थान में दक्षिण की भाषा का अधिक उपयोग क्या होगा, फिर भी आप एक भाषा प्रेम के लिए सीखेंगे तो दक्षिणवालों को लगेगा कि ये लोग हमारी कद्र करते हैं। इससे परस्पर प्यार बढ़ेगा।

उत्तर भारत की तालीम में ही दक्षिण भारत की एक भाषा सीखना अनिवार्य कर देने से उनके लिए भी हम हिन्दी लाजमी कर सकते हैं। उन लोगों को संस्कृत, हिन्दी, इंग्लिश और उनकी एक भाषा, इस तरह चार-चार भाषाएँ सीखनी पड़ती हैं और हमें तीन ही भाषाएँ सीखनी पड़ती हैं। इससे उन्हें लगता है कि यह अन्याय हो रहा है। वहाँके विद्यार्थियों को भी चार भाषाओं का बोझ हो जाने से पिछड़ जाने का भय लगता है, इसलिए उन्हें चार भाषा सीखनी हैं तो हमें भी चार भाषाएँ सीखनी चाहिए। अगर संस्कृत न सीखें तो चलेगा। तब दोनों के लिए तीन-तीन भाषाएँ हो जायँगी। बैलेन्स भी हो जायगा। इसलिए अब दक्षिण को एक भाषा सीखना अनिवार्य किये बिना अखिल भारतीय एकता नहीं सधेगी।

हर रोज आधा घंटा तमिल या मलयालम सीखें। उनका साहित्य पढ़ें। उस साहित्य का हिन्दी में अनुवाद भी करें। अनुवाद का उपयोग भी होगा, परन्तु बहुत उपयोग तो प्रेम के लिए होगा। प्रेम होने से दक्षिणवालों को भी यह इत्मीनान होगा कि उत्तर भारतवाले हमारी कद्र करते हैं। ऐसा होने से पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का सवाल पैदा हुआ, वैसे ही उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत का सवाल पैदा हो सकता है।

भारत की तरह लिपि भी एक हो

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दी भाषा का प्रचार आप करते हैं, वैसे ही आपको नागरी लिपि का भी प्रचार करना चाहिए। यह लिपि पढ़ने के लिए बहुत सरल है। नहीं तो लिपि के कारण आँख को बहुत तकलीफ होती है। इस वास्ते अगर हिन्दी राष्ट्र-भाषा-प्रचार सभा की पुस्तकें नागरी लिपि में आप प्रसिद्ध करेंगे तो आँखों को तकलीफ नहीं होगी। दक्षिण भाषा का अनुवाद तो आप प्रसिद्ध करते ही होंगे। परन्तु उसी भाषा की किताब नागरी लिपि में भी प्रसिद्ध होनी चाहिए। उसके लिए करीब-करीब कंठ ही हो सकती हो, ऐसी किताब ढूँढ़ लीजिये। जैसे तमिल का "तिरुकुरष्ठ" है। इसमें ३५० से ज्यादा और ४०० से कम श्लोक हैं। बड़े-बड़े अक्षरों में, नागरी लिपि में आप छापें और साथ-साथ सस्ती दें तो लोग आसानी से खरीदेंगे, कंठ करेंगे तथा पढ़ेंगे भी। नागरी लिपि में उनकी भाषा की किताब अगर होती है तो उनके लिए भी लाभदायक ही होता है। मैंने तो इसका आरम्भ कर दिया है। मेरा पत्र-व्यवहार नागरी लिपि में ही चलता है, इसीलिए कन्नड़ तमिल, तेलगु, मलयालम वगैरह पत्र मुझे नागरी लिपि में आते हैं। इसी तरह कुछ किताबें नागरी लिपि में छापी जायँगी तो सबके लिए पढ़ना आसान होगा।

(कन्नड़ भाषा में नागरी लिपि में "गीता-प्रवचन" छपना शुरू हो गया है। उसके पहले पचास-साठ पन्ने नमूने के तौर पर विनोबाजी के पास आये हैं। उसमें से विनोबाजी ने कुछ वाक्य पढ़कर सुनाये।)

"रुक्मिणी ओंदु तुळसी दळदिंद गिरीधरनन्नु तुगिदळ," अब इसमें रुक्मिणी तुलसीदल, गिरीधर ये शब्द कन्नड़ में लिखे होते तो आप न पढ़ सकते। "भावभक्तिभरितवाद ओंदु तुलसीदलवन्दु रुक्मिणी तवकडियल्लि हाकलु केलसवायितु।" याने भावभक्ति से भरा हुआ तुलसीदल लेकर "तवकडियल्लि" याने तागड़ी में उसने डाल दिया। "आ दळ मंत्रितवादुदु बरीद-ळलवागिरलिल्ल। कर्मयोगिगळ्ल कर्मज ही गेये।" वह तुलसीदल मंत्रित किया हुआ था। कर्मयोगी का कर्म इस प्रकार से होता है, ऐसा इसका अर्थ होता है। इस तरह पढ़ना बहुत आसान होगा। "स्नानमाडि सूर्य-नमस्कार हाकिदरे व्यायामद फलवन्तु सिक्केसिगुत्तते। आरोग्यकानि नमस्कार माडुवुदिल्लं, उपासने-गागि।" याने स्नान करने के बाद सूर्य नमस्कार करेंगे तो व्यायाम का फल तथा आरोग्य तो मिलेगा ही और साथ-साथ उपासना भी होगी। अब इसमें व्यायाम, फल, उपासना, आरोग्य ये सारे शब्द आप समझ सकते हैं। इसलिए लिपि नागरी हो जाय तो बहुत आसानी से दो महीने में यह भाषा सीख सकते हैं।

कन्नड़ भाषा जैसी लिखी हुई रहती है, वैसी ही पढ़ी जाती है। जैसे संस्कृत होती है। मैं दक्षिण हिन्दुस्तान में गया था, तब मुझे पूछा गया कि आप कहाँसे आये? मैंने जवाब दिया—नागपुर से। उन्होंने कहा—नागपुरा? मैंने तो नागपुर शब्द जल्दी बोल दिया, परन्तु उन्होंने हर शब्द पर जोर देकर नागपुरा, ऐसा

उच्चारण किया। संस्कृत में जैसा उच्चारण होता है, वैसे ही इसमें होता है। मैं यह जो कह रहा हूँ, वह गीता-प्रवचन के आधार से कह रहा हूँ। यह गीता-प्रवचन ऐसे नागरी लिपि में उड़िया, सिंधी, गुजराती, तैलगु वगैरह भाषा में प्रसिद्ध हुआ है। इस काम को हिन्दी राष्ट्रभाषा उठा सकती है।

आपका काम तो दक्षिण भारत की भाषा में होना चाहिए। गुजराती, मराठी भाषाओं का काम करने से विशेष लाभ नहीं है। इसलिए नागरी लिपि में दक्षिण भारतकी भाषा की किताब ही आपको प्रकाशित करनी चाहिए। वैसे इनके साहित्य का अनुवाद तो सरकार भी कर सकती है। लेकिन उनकी किताबें नागरी लिपि में प्रसिद्ध होती हैं, यह बहुत बड़ी बात है।

हमारी यात्रा में एक जापानी भिक्षु थे। उनके पास दो महीने रोज घंटा-डेढ़ घंटा जापानी भाषा सीखी। जापानी भाषा अगर नागरी में लिखी जाय तो दक्षिण भारत की भाषा के जैसी ही यह है। अपनी भाषा की रचना कर्ता, कर्म और क्रियापद ऐसी होती है और अंग्रेजी भाषा में कर्ता, क्रियापद और कर्म ऐसी होती है। ठीक हमारी भाषा की रचना के जैसी ही जापानी भाषा होती है। जापानी अगर नागरी लिपि में लिखी जाय तो मराठी और हिन्दी लोग मजे से पढ़ सकते हैं। लेकिन हम ही वह काम न करें तो चीन, जापान को क्या कहा जाय? असल में उनके पास लिपि नहीं है। उनकी चित्रलिपि है। उनको लिपि की जरूरत है। हिंदुस्तान में अगर नागरी लिपि हो जाय तो हम आगे जाकर चीन और जापान में भी नागरी लिपि कर सकते हैं। यह काम प्रथम हिन्दुस्तान में होना चाहिए। अतः आपके लिए नागरी लिपि का प्रचार ही उतना ही महत्त्व का है, जितना हिन्दी भाषा का।

कन्नड़ भाषा में बारहखड़ी नहीं है, चौदह खड़ी है। उसमें दीर्घ के और ह्रस्व के होता है। जैसे के और कै। आपको आश्चर्य होगा कि यह ह्रस्व 'ए' और दीर्घ 'ऐ' का उपयोग तुलसीदासजी ने भी रामायण में किया है। वह रामायण पढ़ने में बहुत आसान हो जाती है। वह महँगी है, पर मैंने अपने पास रखी है। उसमें जो संकेत किया गया है, वही हमने इस कन्नड़ गीता-प्रवचन में किया है।

हिन्दी का प्रचार सर्वोदय का काम है

तीसरी बात यह है कि मैं आप लोगों को सिर्फ हिन्दी प्रचारक नहीं मानता हूँ, बल्कि सर्वोदय-विचार के प्रचारक मानता हूँ। हिन्दी एक भाषा ही है। अब भाषा के जरिये आप सर्वोदय भी कर सकते हैं और सर्वनाश भी। आप क्या करेंगे? आजकल साम्यवाद, समाजवाद, साम्राज्यवाद इस प्रकार तरह-तरह के विचार निकले हैं। उसमें एक सर्वोदय का नया विचार निकला है। यह विचार ऐसा है, जो भारत का विचार है। इस विचार से दुनिया में शान्ति हो सकती है। मैंने यह देखा है कि ज्यादातर राष्ट्रभाषा-प्रचार के लोग कहीं साहित्य की चर्चा करते हैं तो कहीं व्याकरण की। अब व्याकरण की चर्चा तो करनी ही चाहिए, उसके सिवा भाषा नहीं आती है, परन्तु 'रहमन' विनोद की चर्चा तथा सूर-सागर की चर्चा से क्या होगा? सूरसागर की भाषा सीख कर दक्षिण भारत का मनुष्य हिन्दी नहीं बोलेगा। उसे तो अर्वाचीन हिन्दी बोलना सीखना है। इसलिए अर्वाचीन गद्य पढ़कर ही वह बोल सकेगा। अर्वाचीन साहित्य की जो पाठ्य-पुस्तक रखी जाय, वह सर्वोदय-विचार से भरी हुई रखें तो हिन्दी भाषा के साथ-साथ सर्वोदय-विचार का प्रचार होगा। यह आपका एक मिशन हो जाय तो हम समझेंगे कि ग्रामदान, भूदान, संपत्ति-दान आदि कार्य की सफलता में आपका बहुत बड़ा सहयोग होगा। ● ● ●

गुंदी (अहमदाबाद) १९-१२-'५८

स्वागत-प्रवचन

मंदिरों को लोक-मन्दिर बनायें

पिछला सर्वोदय-सम्मेलन पंढ़रपुर में हुआ। उस समय हमने भगवान से प्रार्थना की थी कि सम्मेलन में आये हुए समस्त भक्त-जनों को 'पंढ़रीनाथ' के दर्शनों का सौभाग्य मिलना चाहिए। मन्दिर के ट्रस्टियों ने हमारे विचारों का सहर्ष स्वागत किया। हिन्दू, मुस्लिम, जैन, ईसाई आदि सभी धर्मवालों के साथ हम मन्दिर में गये। हमने भेद-भाव भूलकर भगवान के दर्शन किये।

मन्दिर के परम्परागत रिवाज के अनुसार हमने दर्शन ही नहीं, भगवान का स्पर्शन भी किया। उस समय असीम आनन्द हुआ। जर्मन से आयी हुई हेमा (ईसाई लड़की, जो छह माह से विनोबा जी के साथ घूम रही थी) तो आनन्द से गद्‌गद् हो गयी। आज भी जब वह उस प्रसंग का उल्लेख करती है तो एक-दम भावमय हो जाती है।

पंढ़रपुर में प्रतिवर्ष लाखों लोग भगवान पंढ़रीनाथ के दर्शनार्थ जाते हैं। एकादशी को अधिक यात्री जाते हैं। उसमें भी आषाढ़ और कार्तिक एकादशी को यात्रियों की संख्या चार-पाँच लाख तक पहुँच जाती है। इस प्रकार यह मन्दिर लोक-मन्दिर है। वैसे मन्दिर में सभीको प्रवेश मिलने का अर्थ है, अन्य समस्त स्थानों के लिए मन्दिर प्रवेश की अनुमति मिलना। लेकिन हमारे समाज पर उस घटना का कोई असर नहीं हुआ! पक्षाघाती मरीज संवेदनाशून्य हो जाते हैं, वैसी ही स्थिति आज हमारे समाज की है। एक स्थान की उत्तम घटना का असर सर्वत्र फैल जाय, ऐसा आज नहीं हो रहा है। ज्ञान-प्रचार के तीव्रगामी साधन होते हुए भी वैसा नहीं हुआ। हिन्दू-समाज की आज कैसी बुरी दशा हो गयी है?

पंढरपुर की भाँति आज आप लोगों ने यहाँके मन्दिर को लोक-मन्दिर बनाने का प्रयत्न किया है। अभी यह छोटा मंदिर भी विश्व-मन्दिर बन गया है। यह मन्दिर-प्रवेश का काम आज आपने समझपूर्वक किया होगा तो इसका असर समग्र जीवन पर होनेवाला है। हम सभी परमेश्वर की सन्तान हैं। परस्पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखेंगे, यह शिक्षा मन्दिर-प्रवेश से मिलती है। इससे जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी जितनी समानता ला सकते हैं, उतनी लाने की कोशिश करेंगे, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। ● ● ●

अनुक्रम

१. मन पर विजय...	भीलोड़ा	११ जनवरी '५९	पृ० १२५
२. मैं हर तरह से सफल हूँ	कसाणा	१४ जनवरी	,, ,, १२७
३. बहनें शांति की प्रति...	सागवाड़ा	२१ जनवरी	,, ,, १२९
४. हिन्दी की सरलता...	डूँगरपुर	२६ जनवरी	,, ,, १३०
५. मन्दिरों को लोक...	गुन्दी	२३ दिसम्बर '५८	,, १३२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ- प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित

फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।